■ संस्कृति

कुछ गंभीर इशारे भी

संस्कृति विचार
ज्योतिष जोशी
मेधा बुक्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-32
कीमत: 150 रु.

■ राजकुमार

इस पुस्तक में युवा आलोचक ज्योतिष जोशी ने कला, साहित्य, संस्कृति, बाजारनिष्ठ उपभोक्ता संस्कृति, सूचना क्रांति, सह-अस्तित्व का जीवन-दर्शन आदि अनेक विषयों पर दृष्टिपात किया है, लेकिन यह एक अधूरा मूल्यांकन लगता है. दरअसल, ये सारे विषय इतने जटिल और परस्पर इतने उलझे हुए हैं कि एक-एक पर गंभीरता से विचार करने के लिए स्वतंत्र पुस्तक लिखनी पड़ेगी जबकि यहां इन विषयों पर लेखों और पुस्तक समीक्षाओं की शृंखला है.

समय की विद्रूपता पर चिंता जाहिर करना एक बात है, उससे जूझना दूसरी बात. डॉ. जोशी इन लेखों में जूझते और आलोचना के नए प्रतिमान के लिए संघर्ष करते नजर नहीं आते बल्कि सिर्फ चिंताएं प्रकट करते दिखते हैं. उदाहरण के तौर पर 'अर्द्धशती की हिंदी आलोचना' में वे लिखते हैं, "अब न तो साहित्य में कोई शोर है, न नारा और न आंदोलन. आलोचकों के परिचित गर्जन-तर्जन भी अब कम ही सुनने में आते हैं. हर तरफ उदासीनता और निराशा का माहौल है. साहित्य के पास पाठक नहीं हैं." आदि-आदि. क्या लेखक से पूछा जा सकता है कि स्त्री और दलित साहित्य महज फैशन हैं या आंदोलन? अगर साहित्य के पाठक नहीं हैं तो एक साल में ही अनेकानेक विधाओं की रचनाओं के चार-पांच संस्करण कैसे निकल रहे हैं? अनेक भाषाओं में रचनाओं के अनुवाद क्यों हो रहे हैं? रंगमंच पर मंचन क्यों किया जा रहा है? साहित्यिक पत्रिकाओं की बाढ़ क्यों आई है? प्रकाशकों के पास नई कार कहां से आ रही है? 'जिम्मेदार आलोचना विवेक' लेख में लेखक ने माना है कि पूर्ववर्ती आलोचना ने अपनी पसंद-नापसंद पर कायम रह कर व्यापक आलोचना कर्म को संकुचित किया. अनेक विधाओं मसलन संगीत, नृत्य, नाटक, रंगमंच, फिल्म आदि के विवेचन से वह दूर रही है जबकि "...नई पीढ़ी की आलोचना उसे व्यापक सांस्कृतिक कर्म का हिस्सा मानती है, इसलिए उसके विवेचन में वह हिस्सेदारी निभा रही है." इन पंक्तियों को पढ़ने के बाद साफ पता लगता है कि लेखक ने असावधानीवश यह कह दिया है कि साहित्य के पास पाठक नहीं हैं. अन्यथा आलोचना को व्यापक सांस्कृतिक कर्म मानने वाली, उसमें हिस्सेदारी निभाने वाली युवा पीढ़ी बगैर पाठक हुए कैसे हिस्सेदारी निभाएगी? क्या साहित्य के पाठक और आलोचक अलग होते हैं?

ज्योतिष जोशी इन लेखों में आलोचना के नए प्रतिमान के लिए संघर्ष करते नजर नहीं आते, सिर्फ चिंताएं प्रकट करते दिखते हैं.

पिछले कुछ वर्षों में हिंदी साहित्य में स्त्री साहित्य, दलित साहित्य, कमोबेश आदिवासी साहित्य और मुस्लिम लेखकों के द्वारा लिखा गया साहित्य काफी उभरा है. इस उभार ने पुरानी सोच-समझ के पोंगा पंडित पाठकों को धूल चटा दी है, लेकिन युवा वर्ग में इसको व्यापक स्वीकृति है. डॉ. जोशी ने भी 'साहित्य में दलितवाद' पर विचार किया है. यहां यह दोहराना आवश्यक है कि स्त्रियों की भूमिका पर चर्चा के बगैर 'संस्कृति विचार' अधूरा माना जाएगा. नासिरा शर्मा की पुस्तक 'किताब के बहाने' पर लिखित समीक्षा 'वैचारिक उत्तेजना की दृष्टि' उसकी पूर्ति नहीं करती. जहां तक 'साहित्य में दलितवाद' लेख का सवाल है, वह एकांगी विवेचन से ग्रस्त है. युवा पीढ़ी की आलोचना को विवेकवान, व्यापक दृष्टिसंपन्न मानने वाले आलोचक जोशी ने इस लेख में दलितवादी नजरिए, साहित्य और राजनीति पर उंगली उठाई है, लेकिन उसके महत्व को रेखांकित नहीं किया है. लेखक ने इस पर अंधाधुंध अनेक आरोप लगाए हैं, मसलन, उनका मानना है कि दलित राजनेता और लेखक सवर्णानुसरण करते हैं, सुविधा कोने खोजने में व्यस्त हैं, अपना सिक्का चलाना चाहते हैं, साहित्य की 'अखंड परंपरा' को खंडित कर रहे हैं, मराठी की नकल कर रहे हैं. दलित साहित्य को लगभग घृणा, प्रतिक्रिया और विरोध का साहित्य मानते हुए उनका कहना है कि "इस आंदोलन का कोई परिणाम शायद ही निकले." शुक्र है, यहां उन्होंने दलित साहित्य को आंदोलन माना है. इस प्रकार की अनेक परस्पर विरोधी बातें उनके लेख में मौजूद हैं.

डॉ. धर्मवीर के विमर्श से क्षुब्ध जोशी 'कबीर की प्रासंगिकता' पर लिखते हुए कहते हैं कि कबीर को समाज सुधारक, क्रांतिकारी आदि न माना जाए बल्कि भक्त माना जाए. "कबीर शुद्ध भक्त हैं." यहां उनका यह दावा खंडित होता दिखता है कि युवा आलोचना पूर्वग्रह मुक्त और लकीर पीटती आलोचना नहीं है. 'उपभोक्तावाद और संप्रेषण का संकट' सर्वाधिक सारगर्भित और विचारोत्तेजक लेख है. अर्थकेंद्रित भूमंडलीकृत समाज में कला को जिस प्रकार 'उपभोक्ता वस्तु' बना दिया गया है, उसका गंभीर और तार्किक विश्लेषण यहां प्रस्तुत किया गया है. बाजारवाद और पूंजी के नग्न खेल का विरोध करते हुए लेखक ने प्रयोगों में कृत्रिमता और मानक कलाहीनता को रेखांकित कर सचेत किया है.

पुस्तक में 'सभ्यता बनाम बर्बरता का प्रश्न' भी उठाया गया है जिसमें द क्लैश ऑफ *सिविलाइजेशंस ऐंड रीमेकिंग ऑफ वर्ल्ड* ऑर्डर की आलोचना है. 'पत्रकारिता का संकट' में आदर्श विहीन पत्रकारिता की निंदा की गई है. कुछ कमियों के बावजूद पुस्तक विचारोत्तेजक है. ■

■ पत्रकारिता

अहम आकलन

पत्रकारिता की लक्ष्मण रेखा
आलोक मेहता
सामयिक प्रकाशन
दरियागंज, नई दिल्ली-2
कीमत: 150 रु.

■ अजित राय

भारतीय जनमानस में छपे हुए शब्दों के प्रति खास किस्म का आकर्षण एवं विश्वास वाचिक परंपरा वाले इस देश की विलक्षण विशेषता है. यही वजह है कि आज भी प्रिंट मीडिया की बहुत और असर सबसे अधिक है. वरिष्ठ पत्रकार आलोक मेहता की यह पुस्तक इस पेशे से जुड़े और इसमें रुचि रखने वाले और इससे प्रभावित सभी तरह के पाठकों के लिए एक ऐसी जरूरी किताब है जो इस पेशे के व्यावहारिक पक्षों के संदर्भ में सैद्धांतिक आचार संहिता के सभी मुद्दों पर सोदाहरण विवरण प्रस्तावित करती है.

मेहता का निर्विवाद निष्कर्ष है, "अगर कोई आचार संहिता हो सकती है तो वह स्वयं पत्रकार ही तय कर सकते हैं. इसके लिए सरकार द्वारा थोपे गए किसी नए कानून की आवश्यकता नहीं है. पाठक को विश्वास होना चाहिए कि छपा हुआ हर शब्द ईमानदारी से लिखा गया है." इसके साथ ही वे यह भी कहते हैं कि पत्रकारों, संपादकों और मालिकों यानी प्रबंधन की निरंकुशता को रोकने

के लिए बनी संस्था भारतीय प्रेस परिषद असमर्थ और शोभा की वस्तु होकर रह गई है.

पुस्तक का सबसे दिलचस्प हिस्सा लेखक द्वारा लिखी गई भूमिका है, जिसमें उन्होंने अपने 30 साल के पत्रकार जीवन के जीवंत अनुभवों के आधार पर एक पत्रकार के आत्मसंघर्ष की कहानी प्रस्तुत की है. पुस्तक के आखिरी हिस्से में शामिल विभिन्न आचार संहिताओं का विवरण एक तुलनात्मक परिदृश्य बनाता है. मसलन, एडीटर्स गिल्ड की आचार संहिता, ब्रिटिश सोसायटी ऑफ एडीटर्स की आचार संहिता, भारतीय प्रेस परिषद में शिकायत का तरीका और उन शिकायतों का निपटारा. अंतिम अध्याय में लेखक ने प्रेस परिषद में दाखिल की गई कुछ महत्वपूर्ण एवं चर्चित शिकायतों पर हुई सुनवाई की विस्तृत केस हिस्ट्री दी है, जिससे आचार संहिता की दोनों पक्षों द्वारा धज्जियां उड़ाने और फिर भी नैतिक बने रहने के पाखंड का पर्दाफाश होता है. इस किताब में शायद पहली बार 'सांस्कृतिक समाचारों की आवश्यकता' पर ठीक ढंग से विचार किया गया है. मेहता दो टूक शब्दों में कहते हैं, "एक ओर तो संस्कृति पर इतना अधिक गर्व और दूसरी ओर हिंदी अखबारों में सांस्कृतिक रिपोर्टिंग या तो नदारद होती है या नीरस और उबाऊ. इसी वजह से ऐसी खबरों को सामान्य पाठक बहुत रुचि से पढ़ता भी नहीं है."

इन तमाम मुद्दों पर विचार करते हुए मेहता ने संपादकों के गिरेबान में भी झांकने की निर्भय कोशिश की है. पत्रकारिता की गिरती साख और स्तर के लिए उन्होंने संपादकों को भी जिम्मेदार ठहराया है, जो मालिकों और प्रबंधन के नाम पर कई अवांछित कार्य करते रहते हैं. 'राजनीति और पत्रकारिता के रिश्ते', 'अपराध समाचार की सीमा रेखाएं', 'सूचना पाने का अधिकार और जिम्मेदार पत्रकारिता', 'संवाददाता सम्मेलन की सीमाएं' और 'चुनाव समाचारों का प्रस्तुतीकरण' जैसे अध्यायों में उन्होंने पत्रकारीय संयम और निष्पक्षता की सीमाओं पर प्रकाश डाला है जिसके आधार पर इस पत्रकारिता की लक्ष्मण रेखा खींच सकते हैं. 'हिंदी पत्रकारिता की चुनौतियां', 'इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से मुकाबला', 'अखबार के बदलते रंग, प्रिंट मीडिया में हिंदी', तथा 'संपादकीय स्तर पर सुधार और प्राथमिकताएं' शीर्षक अध्यायों में उन्होंने कुछ सैद्धांतिक और तकनीकी मुद्दों को आधुनिक दृष्टिकोण से समझने की कोशिश की है. यह किताब पूर्व प्रकाशित लेखों का संकलन नहीं बल्कि खास तौर से लिखा गया आकलन है.

यह पुस्तक राजेंद्र माथुर, प्रभाष जोशी की पीढ़ी के बाद की पत्रकारिता के एक महत्वपूर्ण संपादक की आत्मस्वीकृतियां, पेशेगत नैतिकता की चिंताओं और भावी परिदृश्य पर खुल कर बातचीत करने का एक व्यवस्थित प्रस्ताव भी है जिसे गंभीरता से लिया जाना चाहिए. ■

■ कला

प्राचीन परंपरा की खोज

वैदिक-कालीन सर्वेक्षक कलाएं
डॉ. जगदीश चंद्रिकेश
अनन्य प्रकाशन
नरिंस रोड, नई दिल्ली-33
कीमतः 500 रु.

■ देव प्रकाश चौधरी

जब भी आदिम कला पर चर्चा होती है, मोहनजोदड़ो काल की कला से ही बात शुरू होती है. डॉ. जगदीश चंद्रिकेश ने कला को और पीछे जाकर देखने और समझने की सकारात्मक कोशिश की है. उनकी यह किताब चित्र, मूर्ति और वास्तुकला के आरंभ की खोज को नए सिरे से परिभाषित करते हुए इस मान्यता को बल देती है कि ये कलाएं वैदिक आर्यों के पास उन्नत अवस्था में थीं.

आर्यों की पहचान इतिहास के धुंधलके में गुम है. ऐसे में आर्यों की कला का उद्गम कहां और कैसे हुआ, यह बताना संभव नहीं. लेखक का मानना है, "वैदिक साहित्य में आर्यों की कला का उल्लेख जिस रूप में मिलता है, उसे उसका आरंभ माना जा सकता है." हालांकि किसी भी सभ्यता के अध्ययन के लिए पुरातात्विक साक्ष्य प्रामाणिक स्रोत रहे हैं, लेकिन वैदिक-कालीन अवशेषों के न मिलने की संभावना ही अधिक है तो वैदिक सभ्यता को उसके साहित्य से पहचानने की प्रक्रिया में कल्पना और यथार्थ में विभेद आसान नहीं. इस किताब में साहित्य के यथार्थ को पहचानने की कोशिश है. वैदिक साहित्य में ऐसे कई संदर्भ हैं, जिनके आधार पर सांस्कृतिक मूल्यों का निर्धारण होता है. उसमें आर्यों के बरतनों, वस्त्राभूषणों, भवनों, वसति, आयुध व वाहनों आदि के शिल्प के साथ उनके शिल्पियों और कलाकारों का प्रचुर उल्लेख है. इसके आधार पर लेखक ने वैदिक काल का सांस्कृतिक मानचित्र तैयार किया है.

किताब में शिल्प पदावली, चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, शिल्प और सौंदर्य को समूचे वैदिक साहित्य यानी ऋग्वेद से लेकर ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यक ग्रंथों, उपनिषदों और सूत्र ग्रंथों तक में उपलब्ध साक्ष्यों से उनकी उपस्थिति को प्रमाणित करते हुए लेखक ने वैदिक आर्यों के सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश को लेकर प्रचलित भ्रमपूर्ण धारणाओं को दूर करने का प्रयास किया है. वैज्ञानिक पद्धति से तार्किक विश्लेषण और विषय का प्रतिपादन अनूठा है और रोचक भी. सहज ही इस बात की सत्यता जाहिर हो जाती है कि ये कलाएं वैदिक काल में जिंदगी के साथ थीं और जिंदगी के बाद भी. लेखक के विश्लेषण में इस मान्यता को बल मिलता है कि वैदिक वास्तुकला का प्रारंभ आर्य सभ्यता और संस्कृति के केंद्रबिंदु यज्ञ-वेदी से होता है. यज्ञ की वेदी से ही वास्तुकला ने अपनी ऐतिहासिक यात्रा आरंभ की है, जबकि वैदिक-कालीन चित्र के साक्ष्य ऋग्वेद के उस मंत्र से उभरते हैं, जिसमें ऋषि द्वारा अग्निदेव के चित्र को चमड़े पर बनाए जाने का उल्लेख है. ऋग्वेद में ही मूर्तिकला की मान्यता स्थापित होती है. तब शिल्पी को समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त था. प्रमुख व्यक्तियों के साथ उसे सोमपान की

लोकाचार में प्रयुक्तः 3000 ई.पू. की ताम्र प्रतिमाएं

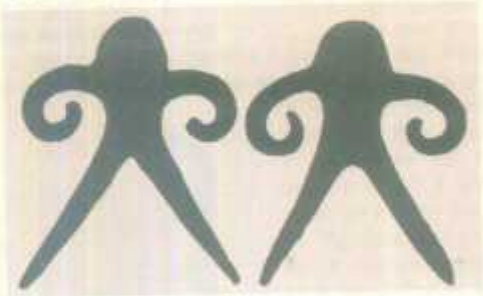

इजाजत थी. अच्छे कार्यों के बदले उसे पुरस्कार मिलता था और कला में प्रतीक विधान भी था. प्रतीकों का वैदिक साहित्य और कलाओं में बार-बार उल्लेख मिलता है. वैदिक साहित्य के अंतिम चरण यानी सूत्र ग्रंथों में भी कला विषयक सामग्री प्रचुर मात्रा में मिलती है. यहीं से कला जगत में और मान्यताओं में आ रहे परिवर्तन को भी रेखांकित किया जा सकता है.

कला मर्मज्ञ पर्सी ब्राउन ने कई दशक पहले अपनी चर्चित कृति *इंडियन आर्किटेक्चरः बुद्धिस्ट ऐंड हिंदू* में ध्यान दिलाया था कि वेदों में हमने धर्म, साहित्य, दर्शन, व्याकरण आदि को ढूंढा लेकिन कला, शिल्प, हस्तकौशल आदि को ढूंढ कर क्रमबद्ध नहीं किया, जबकि वेदों में कला, विज्ञान व विद्याओं के तकनीकी ज्ञान का विपुल भंडार है. डॉ. चंद्रिकेश की किताब को इस चूक की चिंता में किया गया प्रयास कहें तो हर्ज नहीं. ■